E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2020; 2(2): 323-329
Received: 01-03-2020
Accepted: 05-04-2020

डॉ. मनोज कुमार
सह–प्राध्यापक अध्यक्ष,
दर्शनशास्त्र विभाग, जी. बी. कॉलेज, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. मनोज कुमार
सह–प्राध्यापक अध्यक्ष,
दर्शनशास्त्र विभाग, जी. बी. कॉलेज, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

वर्तमान समय में निष्काम कर्म की प्रासंगिकता : एक संछिप्त अध्ययन

डॉ. मनोज कुमार

DOI: https://doi.org/10.33545/27068919.2020.v2.i2d.1026

प्रस्तावना

कर्म का सिद्धांत भारतीय दर्शन का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है । चार्वाक को छोड़कर भारतीय दर्शनके के लगभग सभी संप्रदाय इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार, कर्म या कर्मफल के परिणाम संस्कार के रूप में हमेशा हमारे साथ रहते हैं और वे हमारे जीवन की दिशा को निर्देशित करते हैं। ऐसे तो कर्म का विभाजन कई तरह से किया गया है जैसे नित्य कर्म, नैमितिक कर्म, काम्य कर्म आदि। किन्तु हमारे अध्ययन का उद्देश्य निष्काम कर्म है अतः यहाँ हम कर्म के विभाजन के रूप में सकाम कर्म और निष्काम कर्म के आधार पर अपना अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। इसके लिए सर्वप्रथम सकाम कर्म और निष्काम कर्म के अंतर को जानना आवश्यक है |

सकाम कर्म और निष्काम कर्म में अंतर

सकाम और निष्काम कर्म दोनों एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं | दोनों कर्मों के बीच मूल भूत अंतर कुछ इस प्रकार है -

1. जब भी किसी कामना या इच्छा के वशीभूत होकर हम कोई शारीरिक या मानसिक कर्म करते हैं तो वह सकाम कर्म कहलाता है। जबकि निष्काम कर्म बिना किसी कामना के कर्तव्यबोध से प्रेरित होकर किया जाता है फिर चाहे उस कार्य का परिणाम जो भी हो। इसलिए निष्काम कर्म को धर्म कार्य भी कहा जाता है
2. सकाम कर्म एक इंसान अपने या अपने प्रियजनों के लिए करता है। जबकि निष्काम कर्म के लिए कर्म का सही होना ही पर्याप्त है, उदाहरण के लिए महाभारत के युद्ध में अर्जुन कहते हैं श्री क्रष्ण से मैं राज सिंहासन पाने के लिए अपने करीबियों, भाइयों को नहीं मार सकता। तब कृष्ण कहते हैं तुम कुछ पाने के लिए नहीं बल्कि धर्म के लिए युद्ध करो।
3. निष्काम कर्म किसी तरह के सुख को पाने के लिए नहीं किया जाता दूसरी तरफ सकाम कर्म के पीछे मनुष्य का मुख्य मकसद सुख पाना होता है।
4. निष्काम कर्म को करने के पीछे भविष्य के परिणाम की फ़िक्र नहीं रहती, परिणाम अगर बुरा भी लगता है तो करो क्योंकि सही काम का परिणाम अततः सही होता है। लेकिन हम जो भी सकाम कर्म करते हैं उनमें उम्मीद बड़ी होती है,

5. उदाहरण के लिए हम सही या गलत कार्य इसलिए करते हैं ताकि ऐसा करके भविष्य में सुख मिलेगा।
6. निष्काम कर्म तभी किया जा सकता है जब मनुष्य को आत्मज्ञान हो, लेकिन सकाम कर्म इसलिए किया जाता है क्योंकि व्यक्ति अज्ञान में लिपटा होता है।

सुख- दुःख या निजी लाभ की इच्छा के बिना किसी महत्वपूर्ण कार्य में लगे रहना निष्काम कर्म कहलाता है। निष्काम शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के नि:+ काम शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है परिणाम की आशा किए बिना कर्म करते रहना । इस प्रकार कर्म योग का अर्थ हुआ निष्ठापूर्वक अपने आत्म-कल्याण के लिए या सामाजिक कर्तव्यों के पालन के लिए कर्म करना ।यह संपूर्ण लोक कर्म से बंधा है और मनुष्य प्रकृति के सत,रज,तम गुणों के अधीन होकर कर्म करने के लिए बाध्य है ।

हमारे अध्ययन का केंद्र बिंदु निष्काम कर्म का सिद्धांत है। हम अपने अध्ययन के क्रम में गीता के निष्काम कर्म, तिलक, विवेकानंद, और महात्मा गाँधी के दर्शन में निष्काम कर्म का अध्ययन करेंगे।

भगवत गीता द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतो में कर्मयोग का सिद्धांत अति महत्वपूर्ण सिद्धांत है, इस सिद्धांत के अनुसार निष्काम कर्मयोग के पथ पर चलने वाला साधक अपनी समस्त इच्छाओं, आकांक्षाओं को परमात्मा को समर्पित कर देता है। कर्मफल के प्रति उसकी आसक्ति नहीं रहती। अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों के प्रति वह तत्पर और सजग रहता है। उनके निर्वाह में संतोष की अनुभूति करता है। शरीर से कर्म और मन से चिंतन करते हुए भी वह सांसारिक पदार्थों एवं व्यक्तियों के प्रति निरासक्त होता है। गीता के अनुसार जो कर्म निष्काम भाव से ईश्वर के प्रति समर्पित होकर किया जाता हैं, वे बंधन उत्पन्न नहीं करते। वे मोक्षरूप परमपद की प्राप्ति में सहायक होते हैं। इस प्रकार कर्मफल तथा आसक्ति से रहित होकर ईश्वर के लिए कर्म करना वास्तविक रूप से कर्मयोग है और इसका अनुसरण करने से मनुष्य को अभ्युदय तथा नि:श्रेयस की प्राप्ति होती है। गीता में श्री कृष्ण कहते है

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥

अर्थात तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू फल की दृष्टि से कर्म मत कर और न ऐसा सोच की फल की आशा के बिना कर्म क्यों करूं | इस श्लोक में चार तत्त्व हैं – १. कर्म करना तेरे हाथ में है | २. कर्म का फल किसी और के हाथ में है |३. कर्म करते समय फल की इच्छा मत कर | ४. फल की इच्छा छोड़ने का यह अर्थ नहीं है की तू कर्म करना भी छोड़ दे|

भागवत गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को निष्काम कर्मयोग का उपदेश देते हुए कहते हैं— "जो सुख–दुःख, सर्दी–गर्मी, लाभ–हानि, जीत–हार, यश–अपयश, जीवन–मरण, भूत–भविष्य की चिंता न करके मात्र अपने कर्त्तव्य–कर्म में निरत रहता है वही सच्चा 'निष्काम–कर्मयोगी है।" कर्मयोगी इस सत्य से भली-भाँति परिचित होता है कि सांसारिक द्वन्द तो एक के बाद एक आते हैं और आते रहेंगे। इनका प्रभाव क्षणिक और अस्थाई तथा मात्र नाशवान शरीर तक सीमित है। स्थाई शाश्वत तो आत्मा है, उसका उत्थान और पतन ही मनुष्य का वास्तविक उत्थान और पतन है। अस्तु जो भी कार्य किए जाए वे आत्मोन्नति को ध्यान में रखकर ही किए जाए।

अर्जुन को संबोधित कर भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयासिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योगउच्यते॥

अर्थात — "हे अर्जुन! आसक्ति छोड़कर सिद्धि और असिद्धि के विषय में समबुद्धि रखकर, योग में स्थिर होकर कर्म कर। समत्व को ही योग कहते हैं।" अर्थार्थ 'समत्व' का अर्थ हुआ समान भाव, समभाववृत्ति की एकरूपता, चित्तवृत्तियों की चंचलता का निरोध। जिसे पातंजलि ने "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" कहा है, उसे भगवान ने यहाँ एक ही शब्द 'समत्व' में गूँथ दिया है। हर पल चित्त की चंचलता कर्मों के करने में बाधा डालती है। सुख–दुख, जय–पराजय, हानि–लाभ के द्वंद्व मानसपटल पर सतत उभरते हैं। जय होने से घमंड होता है और पराजय से व्यक्ति हताश हो जाता है। परिस्थितियों मे जो मनःस्थिति को प्रभावित न होने दे, वह समत्व योग की ही उपासना करता है। बाह्य परिस्थिति जैसी भी बने, जिसकी वृत्ति में चंचलता नहीं है, वही कुछ कर्त्तव्यपालन कर सकते हैं।

इसी श्लोक में श्रीकृष्ण ने कहा है— 'संग व्यक्त्वा' अर्थात फल की आसक्ति भी त्यागी जाए। फल की आसक्ति ही मानव द्वारा दुर्बुद्धिजन्य आपत्तियाँ हैं। संग से ही विषयासक्ति की कामना, कामना से क्रोध, क्रोध से मूढ़ता, मूढ़ता से भ्रम व भ्रम से बुद्धि का नाश होता है। बुद्धि का नाश ही मनुष्य के नाश का कारण है।

गीता का कर्म योग निष्काम कर्म योग है। निष्काम कर्म योग का अर्थ है हम कर्म को सदैव साध्य के रूप में देखे उसे कभी भी साधन के रूप में ग्रहण ना करें । हम

कर्म तो करें लेकिन फल में आसक्ति ना रखें । गीता के अनुसार जो कर्म फलाकांक्षा की भावना से किए जाते हैं वे बंधनकारी होते हैं,और उन कर्मों को करने से आसक्ति पैदा होती है । फिर आसक्ति से आकांक्षा जन्म लेती है ।आकांक्षा से क्रोध, क्रोध से मोह उत्पन्न होता है ।मोह से स्मृति नष्ट होती है । स्मृति नाश से बुद्धि नष्ट होती है,और बुद्धि नष्ट होने से सब कुछ नष्ट हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सकाम कर्म हमे बंधन से बांधते हैं। हमें राग,द्वेष,मोह,माया जैसी आसक्तियों में जकड़ कर हमारे मन का अध: पतन करते हैं । जबकि जो कर्म कामना रहित होकर फलाकांक्षा की भावना का परित्याग करके किए जाते हैं, वे मोक्ष दायक होते हैं। निष्काम कर्म में अहम की भावना नहीं होती है। निष्काम कर्मयोगी स्वयं को कर्मों का कर्ता मानता है परंतु फल की प्राप्ति होने पर उस पर अपना अधिकार नहीं समझता है, वह फल को ईश्वरीय कृपा मानता है ।अतः निष्काम कर्म में कर्तव्य की चेतना तथा फल प्राप्ति की अचेतना निहित होती है ।गीता के अनुसार आत्म लाभ एवं लोक संग्रह के लिए किए गए कार्य सकाम नहीं होते ।इन दोनों लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किये गयेऔर ईश्वर को समर्पित कर्म वैसे ही बंधनकारी नहीं होते जैसे कीचड़ में उत्पन्न कमल कीचड़ से प्रभावित नहीं होता। गीता के अनुसार ऐसे सभी कर्मों का त्याग जो फल आकांक्षा से किए जाते हैं सन्यास है तथा कर्मों के फलों का परित्याग त्याग हैं। गीता कर्म प्रवृत्ति की नैसर्गिकता पर बल देती है।

'कर्म' आत्मा और परमात्मा को एकाकार कर देने वाला 'योग' तब बन जाता है जब वह निष्काम हो। निष्काम क्यों, कामना से युक्त क्यों नहीं? क्योंकि मन की कामना ही भवबंधनों का कारण है। गीताकार ने इसी सत्य का रहस्योद्घाटन इस प्रकार किया है— 'मन एवं मनुष्याणाम् कारणं बंध मोक्षयोः।' अर्थात्— मन ही मनुष्य के बंधन या मुक्ति का कारण है।' कामनायुक्त कर्म जहाँ बंधनों में बाँधता है, निष्काम कर्म 'मुक्ति ' का साधन बन जाता है। एक क्षण के लिए भी कर्म से विरत रहना संभव नहीं है, साथ ही कर्म भवबंधनों में भी जकड़ता है, फिर संसार में किस तरह रहा जाए? जीवनमुक्ति का आनंद कैसे उठाया जाए? यजुर्वेद का ऋषि इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए कहता है— 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' अर्थात्— संसार को भोगे; परंतु निर्लिप्त होकर, निस्संग होकर, निष्काम भाव से।

गीता के निष्काम कर्म योग की अविचल विचारधारा भारतीय समकालीन विचारको के विचारो में भी सतत प्रवाहित हो रही है। बाल गंगाधर तिलक, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, अरविन्द घोष, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन आदि समकालीन विचारक भी कर्म के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं लेकिन इसके बारे में उनकी व्याख्या में अंतर है । ये आधुनिक भारतीय विचारक अपने दृष्टिकोण में बहुत उदार और गतिशील हैं। उनके लिए, कर्म का नियम न केवल नैतिकता का एक आदर्श है, बल्कि यह सामाजिक सेवा, सामाजिक बलिदान, सामाजिक सहानुभूति के अनुरूप भी है जो सामाजिक एकजुटता में भी मदद करता है। इन विचारकों में बाल गंगाधर तिलक और स्वामी विवेकानन्द का कर्म की अवधारणा पर विशेष जोर है। तिलक की 'गीता-रहस्य' एक प्रमुख कृति है जिसमें कर्म की अवधारणा को बहुत ही गतिशील और उदार तरीके से वर्णित किया गया है। 'गीता-रहस्य' उनके द्वारा जेल में लिखी गई महान कृतियों में से एक है। यह मुक्ति के लिए समर्पित निःस्वार्थ गतिविधि के विचार का एक मजबूत दार्शनिक और नैतिक-धार्मिक समर्थन है। तिलक ने गीता की 'कर्म योग' की अवधारणा पर पूरा जोर दिया और इसे समग्र रूप से मानवता के उत्थान के लिए लागू करने का प्रयास किया। भगवद गीता की धार्मिक अवधारणा तिलक की शिक्षा की एक विशिष्ट विशेषता थी। उन्हें कर्म योग की पूर्णता का एहसास हुआ। उनके अनुसार, गीता के संदेश की सही ढंग से व्याख्या और ईमानदारी से पालन करने से मनुष्य सुखी और आन्नदमय जी सकता है तिलक का मानना है कि गीता में प्रतिपादित कर्म दर्शन की भूमिका सदियों से भारतीय चिंतन में महत्वपूर्ण रही है। तिलक गीता की नैतिक शिक्षाओं के अनुरूप 'कर्म' को 'कर्म योग' के रूप में परिभाषित करते है । इसका वर्णन उन्होंने अपने कार्य 'गीता-रहस्य' या 'कर्म योग शास्त्र' में अच्छी तरह से किया है। तिलक के अनुसार 'योग' का अर्थ है कुछ विशेष कौशल, कार्यों को करने के शालीन तरीके की बुद्धिमान विधि। तिलक का मानना है कि कर्म योग के सिद्धांत में कर्म से संबंधित भूमिका, कर्म के प्रभाव और मन की शुद्धि के बाद भी कर्म करते रहना जैसे प्रश्नों पर चर्चा होनी चाहिए। तिलक ने कर्म को 'नित्य कर्म', 'नैमितिक कर्म' और 'काम्य कर्म' के रूप में वर्गीकृत किया। संक्षेप में, "मनुष्य द्वारा भोजन से लेकर चिंतन या यज्ञ अनुष्ठान करने तक किए जाने वाले सभी कार्य 'कर्म' शब्द में शामिल होते हैं, चाहे वे शारीरिक (कायिका), वाचिक (वाचिका) या मानसिक (मानसिक) हों। [गीता-रहस्य: बीजी तिलक, पृ. 75]. भगवद गीता के गहन अध्ययन से तिलक को एहसास हुआ कि सामाजिक कर्तव्यों पर जोर देने के लिए उन्हें पश्चिम की ओर देखने की जरूरत नहीं है। गीता ने 'लोकसंग्रह' यानी समाज की स्थिरता और एकजुटता को बढ़ावा देने के लिए कर्म के आदर्श का उपदेश दिया। गीता ने स्पष्ट रूप से आध्यात्मिक आदर्श की सामाजिक सामग्री को

इंगित किया था, और कर्म योग का सुसमाचार सिखाया था, न कि संन्यास का। तिलक समाज से अलग किसी व्यक्ति की नियति की पूर्ति में विश्वास नहीं करते थे।

विवेकानन्द के अनुसार कर्म का अर्थ है कर्म और कर्म का फल दोनों। प्रत्येक अच्छा कार्य शाश्वत और संपूर्ण आत्म-त्याग के उच्चतम विचार की ओर ले जाता है, जहां कोई 'मैं', मैं नहीं रह जाता बल्कि केवल 'तू' रह जाता है । कर्म योग इस लक्ष्य की ओर ले जाता है और इस प्रकार ज्ञान, भक्ति और कर्म एक ही बिंदु पर आते हैं। कर्मयोगी अनासक्त रहकर, स्वतंत्र होकर कार्य करता है तथा अपने कर्तव्यों को ईश्वर का कार्य मानता है। साधन और साध्य की पहचान ही कर्म का रहस्य है। कर्म योग कर्मों का मार्ग है जो ब्रह्म के साथ स्वयं की पहचान की ओर ले जाता है। यह स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए अपनाई जाने वाली नैतिकता और धर्म की एक प्रणाली है। कर्म योग का लक्ष्य निःस्वार्थ कार्य के माध्यम से स्वतंत्रता की प्राप्ति है। इस प्रकार, उनके लिए एक नास्तिक भी कर्मयोगी हो सकता है। यद्यपि ब्रह्मांडीय प्रक्रिया सदैव चलती रहेगी, हम इससे मुक्त हो सकते हैं और शाश्वत आनंद का आनंद ले सकते हैं।

विवेकानन्द के अनुसार कर्मयोग मुख्यतः गृहस्थों के लिये है। वह वैराग्य की भावना से किए गए अपने नैतिक कार्यों के माध्यम से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। वह सौंदर्य, स्वास्थ्य और आनंद के प्रलोभन के बीच रहता है, फिर भी उनसे अनासक्त रहता है। विवेकानन्द कहते हैं कि आदर्श गृहस्थ बनना आदर्श संन्यासी बनने से कहीं अधिक कठिन कार्य है। कर्म योग संसार में कार्य करते हुए आत्मा की अनासक्ति का अभ्यास करने का अनुशासन है। एक कर्म योगी ब्रह्मांड की सुंदरता का आनंद लेता है और फिर भी उनके साथ अज्ञात रहता है। अनासक्त कर्म और स्वतंत्रता एक दूसरे से संबंधित हैं। उनके अनुसार सभी सामाजिक एवं मानवीय कार्य, आत्मत्याग के सभी कार्य मनुष्य की स्वतंत्रता को साकार करने में सहायक होते हैं। दूसरों के कल्याण के लिए किए गए अच्छे कार्य स्वयं की आत्मशुद्धि हैं। निःस्वार्थ कर्म करने से हमें शाश्वत आनंद की अनुभूति होती है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार कर्म योग का अभ्यास न केवल व्यक्तिगत जीवन में किया जाना चाहिए, बल्कि इसे राष्ट्रीय स्तर पर भी ईमानदारी से किया जाना चाहिए। इसलिए उन्होंने कहा, "किसी व्यक्ति विशेष, शहर या राज्य के लिए आप जो कुछ भी करते हैं, उसमें यही रवैया अपनाएं कि बदले में कुछ नहीं मिलेगा। [स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रवाद का आधार, पृ. 72]।" इस संबंध में विवेकानन्द ने कर्म योग के आदर्श और अभ्यास में विशिष्ट योगदान दिया है। कर्मों के फल को भगवान को समर्पित करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करना, निस्संदेह उनकी पूजा करने का एक अप्रत्यक्ष तरीका है। वह चाहते हैं कि मनुष्य अपने साथी प्राणियों में ईश्वर को देखे और उनकी सेवा के माध्यम से सीधे ईश्वर की पूजा करे।विवेकानन्द के लिए कर्म ही पूजा है, कर्तव्य ही ईश्वर है। किसी भी प्रकार के कर्तव्य को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए।

गांधीजी ने गीता को ईश्वरीय संदेश घोषित किया | उनके अनुसार इच्छा रहित कर्म का अर्थ है अपने कर्मों को बिना फल के आशा के ईश्वर को समर्पित कर देना ।"उनका पूरा जीवन निष्काम कर्म के इसी एक विशेष दर्शन पर आधारित था। उनका मानना था कि हमें न केवल अपने प्रियजनों के लिए, बल्कि पूरी दुनिया के लिए, प्राणी मात्र के लिए कार्य करना चाहिए, क्योंकि वे सभी एक ही ईश्वर द्वारा बनाए गए हैं और उनकी रचना का सम्मान करना मनुष्य का कर्तव्य है। कर्मयोग को समझने के लिए, निष्काम कर्म को समझना उचित है, जो कि परिणामों की इच्छा या भय के बिना किया जाने वाला कर्म है। गीता कर्म से भागने के बजाय सही कार्य करने के लिए सही दृष्टिकोण पर अधिक ध्यान केंद्रित करती है। जब कोई व्यक्ति परिणामों के बारे में चिंतित होता है, तो नैतिक कर्तव्य की भावना उससे दूर हो जाती है और स्वयं की स्वार्थ सिद्धि उसके कर्मों का उद्देश्य बन जाता है । इस प्रकार, उनके अनुसार, फल का त्याग हमारे नैतिक जीवन के हिस्से के रूप में अपनाया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है। भगवान कृष्ण कहते हैं, "कर्मयोगी अपने कर्मों के फल का त्याग करके उसे खोता नहीं है, बल्कि विरोधाभासी रूप से उसे प्राप्त करता है।" हम जो बोते हैं वही काटते हैं, जैसी इच्छा होती है वैसा ही फल मिलता है। गांधीजी के अनुसार, एक कर्मयोगी अपने कार्यों और प्रयासों के माध्यम से कौशल और आध्यात्मिक ज्ञान दोनों के संदर्भ में पूर्णता का ज्ञान प्राप्त करता है। यह ध्यान रखना बहुत महत्वपूर्ण है कि कर्मयोगी वास्तव में अहंकार के लेशमात्र भी संकेत के बिना धार्मिक कार्य करते हैं। वे काम के लिए और अक्सर गरीबों-वंचितों के उत्थान के लिए काम करते हैं।

निष्कर्ष

अंत में निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि महाभारत कल में यह सिद्धांत अर्जुन के लिए जितना महत्वपूर्ण था आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है, बल्कि उससे भी ज्यादा। तभी तो संकटग्रस्त ग़ुलाम भारत के लगभग सभी राष्ट्रनायकों ने इस सिद्धांत को स्वीकारा और अपने जीवन में इसी आत्मसाध किया परिणामतः वे भारत को आज़ाद कराने में सफल हुए। आज के इस

विज्ञान एवं तकनीक के युग में सुख सुविधाओं कि प्रचुरता और इसे येन-केन-प्रकारेण पाने कि बढ़ती प्रवृति से नैतिक, धार्मिक जैसे उच्चतर मानवीय मूल्यों का हरास हो रहा है। उच्च संस्कारो का छरण हो रहा है, ऐसे में निष्काम कर्म कि साधना ही वह प्रकाश पुंज है मानव जीवन को तनाव और अवसाद के अँधेरे में रौशनी दिखा सकती है

संदर्भ

1. श्रीमद भगवद्गीता यथारूप - अध्याय २ - पद ४७
2. श्रीमद भगवद्गीता यथारूप - अध्याय २ - पद ४८
3. गीता-रहस्य पुस्तक: बालगंगाधर तिलक पृष्ठ संख्या 75
4. स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रवाद का आधार, पृष्ठ संख्या 72
5. कर्मयोग - स्वामी विवेकानंद (हिंदी संस्करण)